नियामक संस्थाओं में दवा कंपनियों का बढ़ता प्रभाव

हेलेन एप्स्टाइन

फरवरी2009 की बात है। मेक्सिको सरकार के अधिकारियों ने इन्फ्लूएंज़ा के कुछ रोगियों के गले से बैक्टीरिया के नमूने जांच के लिए यूएस सेंटर फॉर डिसीज़ कंट्रोल और कैनेडियन नेशनल लेबोरेट्री को भेजे। जांच में वहां के वैज्ञानिकों को एच1एन1 फ्लू वायरस के नए संस्करण का पता चला। इस खोज को नाम दिया गया - स्वाइन फ्लू। यह नाम इसलिए रखा गया क्योंकि इस वायरस का मूल स्रोत सूअर ही थे। स्वाइन फ्लू ने दुनिया भर में स्वास्थ्य के क्षेत्र में चिंता की लहरें पैदा कर दीं। वर्ष 1918 में जिस फ्लू ने विश्व में लाखों लोगों को मौत की नींद सुला दिया था, वह भी एच1एन1 इन्फ्लूएंज़ा का ही एक संस्करण था। इससे चिंता होना लाज़मी था। विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ) ने खतरे की घंटी बजा दी। एजेंसी ने आगाह किया - दुनिया के दो अरब लोग इस बीमारी के संपर्क में आ सकते हैं और लाखों मर भी सकते हैं। विश्व बैंक के अधिकारियों ने अनुमान लगाया कि यह महामारी वैश्विक जीडीपी (सकल घरेलू उत्पाद) के 4.8 फीसदी हिस्से को चट कर जाएगी।

विश्व स्वास्थ्य संगठन और विश्व बैंक के इन अनुमानों के बाद हर जगह भय का माहौल व्याप्त हो गया। मैक्सिको में स्कूल और कार्यालय बंद कर दिए गए, उड़ानें स्थगित कर दी गईं और कुछ हफ्तों के भीतर ही देश को 2.2 अरब डॉलर का नुकसान झेलना पड़ा।

ब्रिटेन में स्वाइन फ्लू पर बनी सरकारी वेबसाइट पर प्रति सेकंड 2600 हिट्स आईं। न्यूयॉर्क में तो यह स्थिति हो गई कि कोई भी फ्लू हो, लोग अस्पतालों की ओर भागने लगे। इससे अस्पतालों में आम दिनों की तुलना में दस गुना अधिक लोग आने लगे। अस्पतालों की व्यवस्था चरमरा गई जिससे स्वाइन फ्लू के उन रोगियों की भी सही देखभाल नहीं हो पाई, जिन्हें वाकई इसकी ज़रूरत थी। चीन, मिस्र और अन्य कई देशों में भी इसी तरह की अफरा-तफरी मची हुई थी।

सरकारों ने करोड़ों डॉलर मूल्य की फ्लू प्रतिरोधी दवाइयों के ऑर्डर दे दिए। जेपी मॉर्गन के अनुसार वर्ष 2009 में 'इन्फ्लूएंज़ा से निपटने की तैयारियों' पर 10 अरब डॉलर से भी अधिक राशि खर्च की गई। अकेले अमरीका ने ही 4 अरब डॉलर फूंक दिए।

लेकिन जिन भीषण हालातों की भविष्यवाणी की गई थी, वैसा कुछ नहीं हुआ। वर्ष 2009-10 में पूरी दुनिया में इस बीमारी से करीब 18 हज़ार लोगों की मौत हुई। यह संख्या इससे पिछले साल हुई मौतों की तुलना में भी कम थी। इनमें भी बड़ी संख्या ऐसे लोगों की थी जो पहले से ही कैंसर, फेफड़ों की बीमारी, एड्स या अत्यधिक मोटापे की समस्या से ग्रस्त थे। डब्ल्यूएचओ की दलील थी कि उसने उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर ही निर्णय लिया था, लेकिन करोड़ों यूरो बर्बाद करने के बाद अब युरोपीय देशों की सरकारें सवाल उठाने लगी हैं। मार्च 2010 में युरोपीय परिषद ने अपनी रिपोर्ट में कहा कि डब्ल्यूएचओ द्वारा चेतावनी जारी करने से पहले ही यह साफ हो गया था कि एच1एन1 वायरस काफी दुर्बल किस्म का है। परिषद ने एजेंसी की निर्णय प्रक्रिया में दवा कंपनियों की भूमिका को लेकर संदेह और चिंता ज़ाहिर की है।

वर्ष 1999 में डब्ल्यूएचओ ने फ्लू से पैदा होने वाली खतरनाक स्थितियों से निपटने में सरकारों की मदद करने के उद्देश्य से एक कार्यक्रम शुरू किया था। संगठन ने एक दस्तावेज़ तैयार कर सरकारों से ऐसी योजना बनाने का आग्रह किया था जिससे महामारी फैलाने वाले नए वायरस को लेकर जनता को जागरूक कर व्यापक टीकाकरण कार्यक्रम शुरू किया जा सके। कहा गया कि यह नया वायरस अनजाना-सा होगा और इसलिए पर्याप्त संख्या में टीकों का निर्माण करने के लिए छह माह का समय लग जाएगा। इस दस्तावेज़ में एक परिशिष्ट भी जुड़ा हुआ था जिसमें फ्लू-रोधी दवाइयों की नई श्रेणी 'न्यूरेमिनिडेस इन्हीबिटर्स' का उल्लेख किया गया था, जो महामारी पर नियंत्रण कर सकती है।

वर्ष 1999 में फ्लू-रोधी दवाइयों के निर्माता यूएस खाद्य व औषधि प्रशासन (एफडीए) सहित अन्य सरकारी एजेंसियों की मज़ूरी का इंतज़ार कर रहे थे। इसी बीच डब्ल्यूएचओ द्वारा जारी की गई फ्लू महामारी गाइडलाइंस में सरकारों को ये दवाइयां स्टॉक करने की सलाह दी गई। डब्ल्यूएचओ की दलील थी कि शायद इमरजेंसी में निर्माताओं को पर्याप्त मात्रा में दवा का उत्पादन करने का समय न मिल सके।

वर्ष 2005-06 में अमरीकी और युरोपीय देशों की सरकारों ने सर्वाधिक लोकप्रिय 'न्यूरेमिनिडेस इन्हीबिटर्स' दवा का स्टॉक जमा कर लिया। टैमीफ्लू नाम से जानी जाने वाली इस दवा के स्टॉक पर 3 अरब डॉलर खर्च कर दिए गए। 10-15 डॉलर प्रति खुराक की कीमत वाली इस महंगी दवा को खरीदना अनेक अफ्रीकी, एशियाई और लेटिन अमरीकी देशों की जनता के बूते से बाहर था। ऐसे में डब्ल्यूएचओ की तत्कालीन सहायक महानिदेशक व फ्लू महामारी समन्वयन की प्रभारी मार्ग्रेट चान और टैमीफ्लू की स्विस निर्माता हॉफमैन-लॉ रोश के प्रतिनिधियों ने पश्चिमी देशों की सरकारों से विकासशील देशों के लिए टैमीफ्लू की उपलब्धता के लिए आगे आने का आह्वान किया।

वर्ष 2009 में 'महामारी' को लेकर इमरजेंसी की घोषणा के बाद टैमीफ्लू की बिक्री बढ़कर दो अरब डॉलर तक पहुंच गई। कोरिया में इस दवाई की कमी की अफवाहों के बीच एचएसबीसी और अन्य बड़े बैंकों ने उसके स्टॉक के लिए अस्पतालों के साथ प्रतिस्पर्धा करनी शुरू कर दी। एशियाई, अफ्रीकी और लेटिन अमरीकी देश डब्ल्यूएचओ के स्टॉक से टैमीफ्लू के लिए ऑर्डर देने लगे। कुछ देशों की सरकारों ने तो दवाई खरीदने के लिए विश्व बैंक के एवियन एंड ह्यूमन इन्फ्लूएंज़ा फेसिलिटी से लाखों डॉलर का कर्ज़ तक ले लिया।

एवियन फ्लू को लेकर मची अफरा-तफरी के बावजूद अमरीका और अन्य स्थानों पर टैमीफ्लू गोदामों में ही पड़ी रही। उसकी खपत बहुत कम हुई। लेकिन वर्ष 2000 की शुरुआत में जापान में डॉक्टरों ने टैमीफ्लू को नुस्खे के रूप में लिखना शुरू किया और देखते ही देखते वहां इसकी खपत दुनिया की कुल खपत के 60 फीसदी तक पहुंच गई। यह समस्या की शुरुआत थी।

औषधि सम्बंधी उत्पादों पर नज़र रखने वाले ओसाका स्थित एक स्वैच्छिक संगठन 'जापान इंस्टीट्यूट ऑफ फार्माकोविजिलेंस' की डॉ. रोकुरो हमा को समस्या के शुरुआती संकेत 2002 में नज़र आए। उन्होंने इस दवा का सेवन करने वाले बच्चों में कुछ असामान्य लक्षण पाए। चौदह साल का एक बच्चा दवा लेने के कुछ समय के भीतर ही नौवीं मंज़िल पर स्थित अपने घर से नीचे कूद पड़ा। एक सत्रह साल का किशोर सड़क पर दौड़ने लगा जहां वह ट्रक की चपेट में आ गया। तीन साल की उम्र के दो बच्चों और 39 साल के एक व्यक्ति की नींद में ही मौत हो गई।

हमा पक्के तौर पर नहीं कह सकती थी कि ये और ऐसे ही अन्य दर्ज़नों मामलों का सीधा सम्बंध टैमीफ्लू से था या नहीं। लेकिन जब उन्होंने इन मामलों का गहराई से अध्ययन किया तो पाया कि तंत्रिका तंत्र सम्बंधी ये लक्षण उन लक्षणों से बहुत अलग थे, जो आम तौर पर फ्लू के जटिल मामलों में पाए जाते हैं। ये लक्षण दवाइयों के ओवरडोज़ के मामलों में पाए जाने वाले लक्षणों के काफी निकट थे।

जापान के स्वास्थ्य मंत्रालय ने हमा की इस रिपोर्ट का परीक्षण योकोहामा विश्वविद्यालय की एक टीम से करवाया। इस टीम के अध्ययन ने रिपोर्ट खारिज कर दी। हमा ने योकोहामा विश्वविद्यालय के अध्ययन का फिर से विश्लेषण

किया और वे इस निष्कर्ष पर पहुंचीं कि फ्लू-पीड़ित बच्चों में टैमीफ्लू लेने से मतिभ्रम व अन्य तंत्रिका सम्बंधी दुष्प्रभाव चार गुना तक बढ़ गए थे। बाद में एक पत्रकार ने हमा को बताया कि योकोहामा अध्ययन से जुड़े दो वैज्ञानिकों को रोश की सहायक कंपनी शुगाई ने शोध के लिए फंड उपलब्ध करवाया था। शुगाई जापान में टैमीफ्लू की मार्केटिंग करती है।

टैमीफ्लू को लेकर हुए अनुसंधानों और शोध पत्रों का एक पहलू यह है कि सभी के लिए फंडिंग रोश ने मुहैया करवाई है। इन तमाम अनुसंधानों और शोध पत्रों में टैमीफ्लू की पैरवी की गई थी। इनमें से सबसे महत्त्वपूर्ण शोधपत्र एक डॉक्टर लॉरेंट कैसर का है। उनका निष्कर्ष है कि जिन रोगियों ने टैमीफ्लू ली, उनमें फ्लू सम्बंधी जटिलताओं की आशंका 55 फीसदी और अस्पताल में भर्ती होने की संभावना 50 फीसदी तक कम हो गई। लेकिन बाद में उनके अनुसंधान में भी कई खामियां पाई गईं।

टैमीफ्लू के प्रभावों पर संदेह करने वालों में अमरीकी एजेंसी एफडीए भी शामिल थी। टैमीफ्लू के सक्रिय घटक की खोज वर्ष 1989 में एक ऑस्ट्रेलियाई कंपनी ने की थी जिसने ब्रिटिश फर्म ग्लैक्सोस्मिथक्लाइन (जीएसके) को इसका लाइसेंस दिया। कंपनी ने इसका व्यावसायिक नाम 'रेलिंज़ा' रखा और इसके क्लीनिकल ट्रॉयल्स करके नतीजे वर्ष 1999 में एफडीए को सौंप दिए। नतीजों की समीक्षा करने वाली एफडीए की वैज्ञानिक समिति इनसे ज़रा भी प्रभावित नहीं हुई। उसका मानना था कि इस दवा का फ्लू पर कोई असर नहीं पड़ता है, बल्कि दमा रोगियों के लिए सांस लेने में दिक्कतें और बढ़ जाती हैं। पैनल के सदस्यों ने 13-4 से इसके खिलाफ राय जताई, लेकिन एफडीए ने इस राय की अनदेखी कर दवा को मंज़ूरी दे दी। वर्ष 2008 के अंत में एक प्राथमिक जांच में पता चला कि दमा या फेफड़ों की अन्य बीमारियों से पीड़ितों में फ्लू से हुई 22 मौतों की मुख्य वजह रेलिंज़ा हो सकती है। हालांकि इसके बावजूद यह दवाई मार्केट में बनी हुई है।

रेलिंज़ा की खोज के बाद इस दवाई को गोली के रूप में ढालने की कोशिशें तेज़ हो गईं। 1990 के दशक के पूर्वार्द्ध में एक अमरीकी कंपनी जिलेड ने ऐसी ही एक दवा का विकास किया। इसका लाइसेंस हॉफमैन-लॉ रोश को दिया गया। उसने इसका व्यापारिक नाम रखा टैमीफ्लू। चूंकि एफडीए पहले ही रेलिंज़ा को मंज़ूरी दे चुका था, इसलिए उसने इसे 'फॉस्ट ट्रेक' का दर्ज़ा दे दिया। इसका मतलब यह था कि रेलिंज़ा के विपरीत टैमीफ्लू के क्लीनिकल ट्रॉयल्स की गहराई से पड़ताल करने की ज़रूरत नहीं थी। रोश ने टैमीफ्लू पर सौ से अधिक क्लीनिकल ट्रॉयल्स किए, लेकिन उनके नतीजों की किसी बाहरी एजेंसी ने कभी पड़ताल नहीं की। एफडीए ने भी ऐसा करने की ज़हमत नहीं उठाई।

चिकित्सा सम्बंधी अनुसंधानों की स्वतंत्र जांच करने वाले ब्रिटेन के कोक्रेन कोलेबोरेशन ने टैमीफ्लू की ट्रॉयल्स के दस्तावेज़ों का अध्ययन किया तो पाया कि विभिन्न जर्नलों में प्रकाशित शोध पत्रों और वास्तविकता में कुछ न कुछ अंतर ज़रूर है। इन शोध पत्रों में कहा गया था कि जिन 908 लोगों ने टैमीफ्लू ली, उनमें कोई गंभीर साइड इफेक्ट नहीं पाए गए, जबकि रोश के अंदरूनी और अप्रकाशित दस्तावेज़ों से पता चला कि इन ट्रॉयल्स के दौरान तीन ऐसी 'गंभीर प्रतिकूल घटनाएं' हुईं, जिनका सम्बंध टैमीफ्लू के सेवन से था।

वर्ष 2008 में जर्नल 'ड्रग सेफ्टी' में रोश से अनुबंधित लेखकों द्वारा प्रकाशित आलेख के अनुसार चूहों को टैमीफ्लू की काफी भारी खुराक देने के बाद भी उन पर इसका कोई प्रतिकूल असर नहीं हुआ। दूसरी ओर, रोश की जापानी सहायक कंपनी शुगाई द्वारा जापान के स्वास्थ्य मंत्रालय को सौंपे गए दस्तावेज़ों के अनुसार इतनी ही खुराक से आधे से भी अधिक चूहे मर गए थे। इन चूहों में केंद्रीय तंत्रिका तंत्र के वही लक्षण पाए गए थे, जिनका वर्णन हमा ने किया था।

टैमीफ्लू और रेलिंज़ा के सम्बंध में कई तरह के विरोधाभासों से डब्ल्यूएचओ के उस निर्णय पर सवाल उठ खड़ा होता है जिसमें उसने एच1एन1 इन्फ्लूएंज़ा को 'महामारी इमरजेंसी' घोषित कर इन दवाओं की वकालत की थी। इस इमरजेंसी की घोषणा से एक माह पहले मई 2009 में एक प्रमुख महामारी विशेषज्ञ और डब्ल्यूएचओ व ब्रिटेन सरकार के

सलाहकार रॉय एंडरसन ने बीबीसी रेडियो पर कहा था कि केवल रेलिंज़ा और टैमीफ्लू ही उस तरह के महाविनाश से बचा सकते हैं जो 1918 में हुआ था। एंडरसन को रेलिंज़ा की निर्माता कंपनी ग्लैक्सोस्मिथक्लाइन से हर साल 1,16,000 पौंड मिल रहे थे।

वर्ष 2009 में महामारी इमरजेंसी की घोषणा से पहले के दस सालों में रोश और ग्लैक्सोस्मिथक्लाइन कंपनियों से जुड़े वैज्ञानिक डब्ल्यूएचओ के महामारी से बचाव की तैयारी सम्बंधी कार्यक्रम के विकास के हर चरण में शामिल रहे। इस कार्यक्रम का सबसे ज़्यादा फायदा इन्हीं दो कंपनियों को हुआ। इन कंपनियों ने उन दस्तावेज़ों को तैयार करने के लिए राशि उपलब्ध करवाई जिनमें फ्लू महामारी से निपटने की तैयारियों से सम्बंधित गाइडलाइंस दी गई थी।

महामारी इमरजेंसी की घोषणा करने वाली समिति में दवा उद्योग से समर्थन प्राप्त वैज्ञानिक भी मौजूद थे। इस घोषणा के बाद विकासशील देशों ने डब्ल्यूएचओ के टैमीफ्लू स्टॉक फंड से सहायता की अपील की। इसी का नतीजा था कि रोश की बिक्री 2009 में बढ़कर तिगुनी हो गई। इस तरह डब्ल्यूएचओ ने रोश के हितों को ही बढ़ावा देने का काम किया था। जब तक रोश टैमीफ्लू सम्बंधी सूचनाएं स्वतंत्र शोधकर्ताओं के साथ साझा न करे, तब तक पक्की तौर पर कुछ नहीं कहा जा सकता।

एफडीए की निर्भरता भी उन दवा कंपनियों से प्राप्त होने वाले शुल्क पर बढ़ती जा रही है, जिनके उत्पादों के नियंत्रण और नियमन का दायित्व इसी एजेंसी का है। इससे घोटालों की आशंकाएं बढ़ती जा रही हैं। वर्षों बाद पता चल पाता है कि जो दवा बड़े पैमाने पर लिखी जा रही है, उसके कितने साइड इफेक्ट हैं। उदाहरण के लिए पिछले साल पता चला कि ग्लैक्सोस्मिथक्लाइन की मधुमेह की लोकप्रिय दवा 'एवेंडिया' लेने के कारण हज़ारों लोगों को हार्टअटैक का सामना करना पड़ा। इसी कंपनी की अवसादरोधी दवा 'पैक्सिल' के कारण युवाओं में आत्महत्या का खतरा बढ़ गया। मर्क की दर्द निवारक दवा 'वायोक्स' को भी हार्टअटैक के कारण हुई हज़ारों मौतों का ज़िम्मेदार माना गया।

डब्ल्यूएचओ और एफडीए जैसी एजेंसियों को दवा उद्योग के प्रभाव से बचाना आज की सबसे बड़ी ज़रूरत है। दवा कंपनियों को अनुसंधान से सम्बंधित तमाम दस्तावेज़ स्वतंत्र शोधकर्ताओं को उपलब्ध करवाने की अनिवार्यता से भी इस गोरखधंधे पर काफी हद तक लगाम लग सकेगी। ***(स्रोत फीचर्स)***